समयसार, १६१ से १६३ गाथा की टीका। एक शब्द चला है, नहीं? टीका है न? **सम्यक्त्व जो कि मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है..** टीका, १६१ से १६३ की टीका। इन्हें बताओ। अन्तिम तीन गाथा की (टीका)। क्या कहते हैं? सम्यक्त्व जो है, वह आत्मा शुद्ध परिपूर्ण अखण्ड आनन्द (स्वरूप है), उसके सन्मुख होकर, उसका ज्ञान होकर, उसकी प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन, वह पर्याय है। पर्यायरूप भाव है। है न? सम्यक्त्व वह पर्याय है। त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप भगवान (में) अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन अनन्त काल में हुआ नहीं, ऐसे स्वभाव का अनुभव होकर प्रतीति होने का नाम सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन

सम्यक्त्व जो कि मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है.. यह मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है। सम्यग्दर्शन की पर्याय मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है।

उसे रोकनेवाला मिथ्यात्व है;.. इस सम्यग्दर्शन से विरुद्ध; सम्यग्दर्शन की पर्याय जो मोक्ष का कारण है, उससे विरुद्ध मिथ्यात्वभाव है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम में धर्म मानना, पर का मैं कुछ कर सकता हूँ—ऐसी मिथ्याश्रद्धा, इस मिथ्याश्रद्धा के स्थूलरूप से असंख्य (प्रकार) हैं और सूक्ष्म अनन्त (प्रकार) हैं। यह मिथ्यात्वभाव, समकितरूपी भाव से विरुद्ध है। समझ में आया?

सम्यक्त्व (अर्थात्) सम्यक्पना, सत्यपना। यह पूर्ण सत्यस्वरूप प्रभु के अनुभव में प्रतीति होना और आत्मा का आत्मारूप से शुद्ध परिणमन होना। पुण्य और पाप के विकल्प-राग से भिन्न (परिणमन होना), ऐसा जो सम्यग्दर्शन है, वह मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है। आहाहा! मोक्ष अर्थात् आत्मा का पूर्ण आनन्दरूपी लाभ, वह मोक्ष है और पूर्ण दुःख से मुक्त होना, वह मोक्ष है। उस मोक्ष का सम्यग्दर्शन कारणरूप स्वभाव है। आहाहा! कारणरूप स्वभाव है, उससे विपरीत, मिथ्यात्वभाव उससे विपरीत है।

मिथ्यात्वभाव का अर्थ कि पुण्य के दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह पुण्य है, उन्हें धर्म माने और उन्हें धर्म का कारण माने तो वह मिथ्यात्वभाव है। वह मिथ्यात्वभाव, सम्यग्दर्शन जो कि मोक्ष के कारण (रूप) स्वभाव (है, उससे) विरुद्ध भाव है।

मुमुक्षु : पुण्य में दोष क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व दोष है। अनन्त संसार का कारण विपरीत मान्यता। श्रद्धा विपरीत है। जैसा सत्य है, वैसी मान्यता नहीं करके, मैं पर का कुछ कर सकता हूँ और पर से मुझमें लाभ-नुकसान होता है और मुझमें जो दया, दान, व्रतादि परिणाम होते हैं, वे धर्म हैं और धर्म का कारण है, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है। वह मिथ्यात्वभाव मोक्ष के कारणरूप स्वभाव (ऐसे) समकित से विपरीत है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। इतना तो कल आ गया है। इतना तो कल आया था। यह तो आज हिन्दी लोग आये हैं न, (इसलिए फिर से लिया है)।

सम्यक्त्व जो कि मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है.. देखो! पर्याय को स्वभाव कहा,

हों! समकितरूपी पर्याय जो है, वह स्वाभाविक पर्याय है। शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्णानन्द प्रभु का जैसा पूर्ण स्वरूप है, वैसा ज्ञान में आकर, उसमें प्रतीति, विश्वास, रुचि, दृष्टि होना, वह सम्यक्त्व है। वह अनन्त काल में अनन्त काल से हुआ नहीं। वह **सम्यक्त्व जो कि मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है..** पर्याय है न! **उसे रोकनेवाला..** उससे विपरीत **मिथ्यात्व है;..** आहाहा! **वह (मिथ्यात्व) तो स्वयं कर्म ही है,..** विपरीत मान्यता जो है, उल्टी श्रद्धा जो है, वह स्वयं कर्म है। वह कोई आत्मा की दशा, आत्मा है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

अनन्त काल में सम्यग्दर्शन (प्रगट नहीं किया)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो'-छहढाला में आता है। मुनिव्रत लिया, दिगम्बर साधु (होकर) अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत (पालन किये) परन्तु मिथ्यादृष्टि रहा। यह क्रियाकाण्ड मेरी क्रिया है और पंच महाव्रत परिणाम मुझे लाभदायक हैं—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह सम्यक् मोक्ष के कारण से विपरीत भाव है। आहाहा! ऐसा कठिन काम है।

स्वयं कर्म ही है,.. वह आत्मा नहीं। आहाहा! मिथ्यात्वभाव-विपरीत मान्यता (अर्थात्) धर्म को अधर्म मानना और अधर्म को धर्म मानना; जीव को अजीव मानना और अजीव को जीव मानना। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव जो मैल हैं, उन्हें धर्म का कारण मानना- ऐसा जो मिथ्यात्वभाव; वह सम्यक्त्व जो मोक्ष के कारण (रूप) स्वभाव है, उससे विपरीत भाव है। आहाहा! है?

उसके उदय से.. (अर्थात्) उसके प्रगट होने से, विपरीत प्रतीति प्रगट होने से। कर्म का उदय तो निमित्त है। **उसके उदय से ही..** विपरीत श्रद्धा के प्रगटपने के कारण से ही **ज्ञान के मिथ्यादृष्टिपना होता है।** ज्ञान शब्द से (आशय है) आत्मा। आत्मा को विपरीत श्रद्धा के कारण मिथ्यादृष्टिपना होता है। आहाहा!

यह तो दोपहर को बहुत आया था। कल दोपहर को आया था न? अपनी पर्याय को द्रव्य करता है। अपनी पर्याय विकृत हो या अविकृत, वह अपने द्रव्य से होती है। कर्म से विकार नहीं होता और राग से सम्यग्दर्शन नहीं होता। उसमें आया है। आहाहा! उसके बदले मानना कि कषाय की मन्दता का भाव पुण्य, उससे मुझे धर्म होगा - ऐसा जो

मिथ्यात्वभाव, वह सम्यक् मोक्ष का कारण (जो) स्वभाव है, उससे विपरीत भाव है। ऐसा है। यहाँ तक तो कल आया था।

अब ज्ञान। ज्ञान अर्थात्? अपना शुद्ध स्वरूप का स्वसंवेदन ज्ञान। अपना स्वरूप जो चैतन्यमूर्ति भगवान, अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय पूर्ण गुण से भरपूर पड़ा प्रभु आत्मा, उसका ज्ञान। यह पर्याय की बात है न! **ज्ञान जो कि मोक्ष का कारणरूप..** है। यह सम्यग्ज्ञान जो त्रिकाली चैतन्य प्रभु का ज्ञान। त्रिकाली वस्तु तो ध्रुव है परन्तु उसके आश्रय से जो (ज्ञान हुआ, वह) सम्यग्ज्ञान। शास्त्रज्ञान नहीं, पर का ज्ञान नहीं। वह ज्ञान (अर्थात्) आत्मा का ज्ञान। जो ज्ञान जो कि **मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है..** आहाहा! आत्मा का स्वाभाविक ज्ञान। त्रिकाली ज्ञान नहीं। उसकी वर्तमान ज्ञान की पर्याय। आहाहा! वह मोक्ष का कारणरूप सम्यग्ज्ञान है। उससे विरुद्ध अज्ञान है। राग को ही जानना। दया, दान के परिणाम को ही जानना और अपने को न जानना, वह अज्ञानभाव, सम्यग्ज्ञान से विरुद्ध भाव है।

आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव महाविदेह में तो सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वहाँ से यह बात आयी है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव संवत् ४९ में प्रभु के पास गये थे। संवत् ४९ (अर्थात्) दो हजार वर्ष (पहले)। कुन्दकुन्दाचार्यदेव दिगम्बर (सन्त)। (यहाँ परमागम मन्दिर में) बीच में मुनि हैं वे। उन्होंने वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये हैं तो इस शास्त्र में तो यह कहा है कि सम्यग्ज्ञान (अर्थात्) अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप का स्वसंवेदन ज्ञान। स्व (अर्थात्) अपने वेदन का ज्ञान। वह ज्ञान, मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है। उस ज्ञान से विपरीत, राग और पर्याय को ही जानना और पर को ही जानना और अपने को भूल जाना, उस पर को जानने में रुकना होता है, वह अज्ञानभाव है। आहाहा! अपने को जाननेरूप जो भाव है, वह मोक्ष का कारण है, वह मात्र पर को जानने में रूक गया, वह अज्ञान (अर्थात्) ज्ञान से विरुद्ध भाव है। अब ऐसी बातें। समझ में आया?

ज्ञान, जो आत्मज्ञान... इस आत्मज्ञान का अर्थ कोई निमित्त का नहीं, राग का नहीं, पर्याय का (ज्ञान नहीं)। आत्मा जो भगवान पूर्णानन्द स्वरूप सच्चिदानन्द—सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्दादि गुण का भण्डार, ऐसे आत्मा का ज्ञान; वह ज्ञान, मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है। उस ज्ञान से विपरीत मात्र शुभ-अशुभभाव अथवा ज्ञान को पर में रोकना, वह

अज्ञान है। वह अज्ञान, आत्मज्ञान (कि) जो मोक्ष का कारण है, उससे यह अज्ञान विपरीत भाव है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : चौदह गुणस्थान जीवसमास वाँचन करें और पढ़ें तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान अनन्त बार पढ़ा। अभेददृष्टि नहीं की, अभेद का ज्ञान नहीं किया, वहाँ वह सब व्यर्थ है।

मुमुक्षु : ग्यारह अंग पढ़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्यारह अंग अनन्त बार पढ़ा। एक आचारांग में अठारह हजार पद और एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक, ऐसे ग्यारह अंग भी अनन्त बार पढ़ा। आहाहा! और पंच महाव्रत तथा पंच समिति, गुप्ति व्यवहार भी अनन्त बार किया। वह तो राग की क्रिया है। शास्त्र का ज्ञान (किया), वह तो परसन्मुख के लक्ष्यवाला ज्ञान है। आहाहा! उस पर के लक्ष्य में रुकने से अपना जो आत्मज्ञान, जो आत्मा के ज्ञान की सम्यक् पर्याय, जो मोक्ष का कारण है, उस ज्ञान को मात्र पर में रोकना, वह अज्ञान (है और) वह ज्ञानस्वभाव से विरुद्ध भाव है। आहाहा! सूक्ष्म कठिन बात है, प्रभु!

मोक्ष का मार्ग, भगवान जिनेश्वरदेव की अलौकिक बात है, वह कहीं साधारण बात नहीं है। आहाहा! अनन्त काल में कभी किया नहीं। अनन्त बार दिगम्बर साधु हुआ परन्तु मिथ्यादृष्टि (रहा)। राग किया है, महाव्रत का राग, वह आस्रव, दुःख है। उसे चारित्र माना और उसे धर्म माना है। ऐसा जो आत्मज्ञान से विरुद्ध ज्ञान, वह अज्ञान है, आत्मज्ञान से विरुद्ध है। आहाहा! अकेला पर का ज्ञान, वह अपने स्वरूप के ज्ञान से विरुद्ध है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग धर्म, वीतराग जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ की बात अलौकिक है!

वह ज्ञान अर्थात् त्रिकाली ज्ञान नहीं। त्रिकाली आत्मा का ज्ञान जो मोक्ष का कारणरूप स्वभाव... है? **उसे रोकनेवाला अज्ञान है;..** ज्ञान पर में रुक गया, वह अज्ञान है। आहाहा! अपने को जानना था, ऐसा जो ज्ञान, वह ज्ञान मात्र पर में रुक गया, यह अज्ञान है। यह अज्ञान, ज्ञान (कि जो) मोक्ष का कारण (है, उससे) विपरीत भाव है, ऐसी बात है। यहाँ तो (अज्ञानी कहते हैं) बाहर से यह करो, यह करो, दया पालन करो, व्रत करो। अब यह तो सब राग की क्रिया है और राग की क्रिया में धर्म मानना, वह मिथ्याज्ञान और मिथ्याश्रद्धा है। ऐसी बात है, भाई! समझ में आया?

(ज्ञान) **मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है..** ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान, आत्मा का ज्ञान। भगवान स्वरूप प्रभु का ज्ञान, सम्यग्ज्ञान जो मोक्ष के कारण (रूप) पर्याय है, उससे विरुद्ध। **रोकनेवाला..** अर्थात् विरुद्ध। पर के ज्ञान में रुक गया तो अपने ज्ञान से विरुद्ध अज्ञान है। वह अज्ञान अपने सम्यग्ज्ञान से विरुद्ध भाव है। आहाहा! भले अकेला शास्त्र का ज्ञान हो, परन्तु अपने ज्ञान से वह विरुद्ध है, परलक्ष्यी ज्ञान है। आहाहा! वह शब्दज्ञान है, वह आत्मज्ञान नहीं। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई!

वह तो स्वयं कर्म ही है,.. क्या कहते हैं? कि अपने स्वरूप का जो ज्ञान है, निर्मल पर्याय होनी चाहिए, उसे छोड़कर मात्र पर के ज्ञान में रुक गया, वह ज्ञान कर्म है। वास्तव में तो वह विकारी भाव है। आहाहा! वह आत्मा का ज्ञान नहीं। शास्त्र का शाब्दिक ज्ञान हो, वह भी अज्ञान है। आहाहा! मात्र पर में रुक गया और स्व का आत्मज्ञान है, वह पर में रुक गया, वह अपने ज्ञान से विपरीत अज्ञान है तो वह ज्ञान को रोकनेवाला अथवा ज्ञान से विरुद्ध वह अज्ञान है। आहाहा! ऐसी बात, लो!

स्वयं कर्म ही है,.. वह कार्य है। विकार, अज्ञान, पर को जानना, वह समान कार्य ही है, कर्म ही है; वह आत्मा नहीं है। **उसके उदय से..** मात्र पर के ज्ञान में रुकने से। उसके उदय से (अर्थात्) प्रगट होने से, अपना जो आत्मज्ञान है, उससे वह ज्ञान विरुद्ध है। आहाहा! **ज्ञान के अज्ञानीपना होता है।** इस ज्ञान शब्द से (आशय यह है कि) आत्मा को अज्ञानीपना होता है। आहाहा! भाषा किस प्रकार की! अटपटा जैसा नया लगे! वे (अज्ञानी) कहते हैं यात्रा करो, भक्ति करो और यह करो, उससे धर्म (होगा)। यहाँ कहते हैं कि उसमें धर्म माननेवाले को आत्मज्ञान से विरुद्ध भाव है, अज्ञान है। आहाहा! दो बोल हुए।

तीसरा (बोल)। **चारित्र..** तीसरा बोल। **चारित्र..** चारित्र किसे कहते हैं? कि अपना शुद्धस्वरूप जो आनन्दकन्द प्रभु है, उसमें लीन होना, रमणता करना, चरना, रमना, जम जाना। यह चारित्र पर्याय में, हों! आत्मा का गुण चारित्र है, वह तो त्रिकाल है परन्तु उस चारित्रगुण में वर्तमान पर्याय उस गुण में, आनन्द में रमे, (वह चारित्र है)। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, आहाहा! उसमें रमना। रमना कब होता है? जब उसका ज्ञान होता है, दृष्टि में-श्रद्धा में वह वस्तु आ गयी हो तो उसमें रमणता होती है। उसमें जो

रमणता होती है, वह चारित्र है। वह चारित्र जो है, वह मोक्ष के कारणरूप स्वभाव है। वह चारित्र, हों! पंच महाव्रत के परिणाम (होवें), वह चारित्र नहीं है। आहाहा! वह तो अचारित्र है, परन्तु यहाँ जो चारित्र, मोक्ष का कारण है, (उसकी बात है)। यह अचारित्र भाव चारित्र से विरुद्ध भाव है। आहाहा!

पंच महाव्रत के परिणाम, व्यवहार समिति, गुप्ति के भाव, वह जो आत्मा का चारित्र है, जो मोक्ष के कारण (रूप) स्वभाव है, उससे विपरीत भाव है। आहाहा! अचारित्र है। पंच महाव्रत के परिणाम, व्यवहार अट्ठाईस मूलगुणादि, वह सब अचारित्र है। वह चारित्र से विरुद्ध अचारित्र है। वह चारित्र के भाव से विरुद्ध भाव है। आहाहा! ऐसा है। अभी तो गड़बड़-गड़बड़ सब ऐसी चली है, कहीं मूल तत्त्व—पूरी बात को ही जगत में फेरफार कर दिया है। लोगों को निवृत्ति नहीं मिलती और सिर पर (गुरुरूप से) जो कहे वह जी... हाँ... जी... हाँ...! करके (मान लेते हैं)। आहाहा!

यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतरागदेव का यह कथन है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव भगवान के पास संवत् ४९ में गये थे। वहाँ दो हजार वर्ष पहले (गये थे) आठ दिन वहाँ रहकर यहाँ आये थे। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त! यह आता है न! 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।' वे कुन्दकुन्दाचार्यदेव वहाँ भगवान के पास गये थे। अभी भगवान विराजते हैं। महाविदेह में समवसरण में विराजते हैं। दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्यदेव गये थे, वहाँ से आकर ये शास्त्र बनाये हैं। आहाहा! भाषा समझ में आती है न, भाई! बात सूक्ष्म है, भगवान! बहुत सूक्ष्म तत्त्व, प्रभु! आहाहा!

तेरी प्रभुता... आहाहा! अपने भजन नहीं आया था? पण्डितजी ने नहीं गाया था? 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, पर की आश कहाँ करे प्रीतम, पर की आश कहाँ करे प्रीतम, किस बातें तू अधूरा, प्रभु मेरे...' आहाहा! 'प्रभु सब बातें तुम पूरा..' आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता... ऐसी अनन्त शक्तियों का भण्डार भगवान आत्मा है। पूर्णानन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा'। आहाहा! भजन है। 'पर की आश कहाँ करे प्रीतम' अरे!.. प्रिय प्रभु! इस शुभ के राग द्वारा, दान और पर की आशा रखकर उससे धर्म होगा, (ऐसा मानता है), प्रभु! तुझे यह क्या हुआ? क्या हुआ तुझे? 'पर

की आश कहाँ करे प्रीतम, किस बातें तू अधूरा' प्रभु! तू किस बात से अधूरा है? अन्दर पूर्णानन्द है न, नाथ! कैसे जँचे? आहाहा!

उस पूर्ण आनन्द और पूर्ण स्वभाव में रमना, चरना, रमना, आनन्द का भोजन करना... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करना, वह चारित्र है। वह चारित्र। वह चारित्र, मोक्ष के कारण (रूप) स्वभाव है। उस चारित्र से विरुद्ध पंच महाव्रत के परिणाम आदि दया, दान के परिणाम आदि राग, वह चारित्र से विरुद्ध भाव है। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा!

चारित्र जो कि मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है,.. आहाहा! चारित्र अर्थात् क्या? बापू! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानसहित आत्मा के आनन्द में रमना, चरना, जम जाना। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव-वेदन करना, वह चारित्र है।

मुमुक्षु : वह चारित्र तो आठवें गुणस्थान में होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : छठे गुणस्थान से चारित्र है, आंशिक चौथे से है। स्वरूपाचरण चारित्र सम्यग्दर्शन से (शुरु) होता है। आहाहा! यह चारित्र सातवें का लिया है। सातवें से नीचे छठवें में आते हैं, (तब) पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, तो कहते हैं कि वह चारित्र से विपरीत भाव है। आहाहा! अरे रे! सत्य बात सुनने को मिलती नहीं।

परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव का यह हुकम है कि चारित्र जो है, वह तो मोक्ष के कारणरूप पर्यायस्वभाव है, वह वीतरागी पर्याय है। आहाहा! चारित्र जो है... आत्मा जिनस्वरूप है, 'घट-घट अन्तर जिन बसै, घट-घट अन्तर जैन; मत मदिरा के पान सो, मतवाला समझे न'। 'घट-घट अन्तर जिन बसै' प्रभु! जिनस्वरूपी तू है, भगवान! ऐसा करके आचार्य बुलाते हैं। आहाहा! भगवान! 'घट-घट अन्तर जिनस्वरूपी' तू है न, प्रभु! आहाहा! पूर्ण जिनस्वरूपी स्वभाव जिनस्वरूप न हो तो वीतराग जिनस्वरूप की पर्याय कहाँ से आयेगी? आहाहा! समझ में आया? तेरा स्वरूप जिनस्वरूप है, उसमें रमना, वह वीतरागी चारित्र हुआ। आहाहा! यह अपने आ गया था, नहीं? परम वीतराग चारित्ररूप शुद्ध उपयोगरूपी धर्म। आया था न? आहाहा! परम वीतराग वीतरागी चारित्र... आहाहा! बापू! (ऐसा) चारित्र कहाँ है? परम वीतरागी चारित्र शुद्ध उपयोग, दया, दान, व्रत के

परिणाम तो अशुद्ध उपयोग हैं, वह तो मैल है। आहाहा! यह जो शुद्ध उपयोग, वीतराग चारित्ररूप शुद्धोपयोग, वह धर्म और चारित्र है। वह चारित्र, मोक्ष का कारण (रूप) स्वभाव है। उससे विरुद्ध जितने दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव आते हैं, भाव, वह सब अचारित्र है। वह चारित्र से विरुद्ध भाव है। आहाहा!

चारित्र जो कि मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है,.. कारणरूप भाव है, स्वभाव है। पश्चात् इसमें-भावार्थ में भाव (ऐसा अर्थ) किया है। **कारणरूप स्वभाव है, उसे रोकनेवाली..** भाव क्यों कहा? वह पर्याय है न! कोई (ऐसा) मान न ले कि यह त्रिकाली स्वभाव है। त्रिकाली स्वभाव तो शुद्ध ध्रुव त्रिकाली शुद्ध चैतन्य है, ध्रुव! उसमें रमना, आनन्द में रमना, वह चारित्र पर्याय है। वह चारित्र की पर्याय मोक्ष का कारण है। वह चारित्र की पर्याय। व्यवहार पंच महाव्रत के परिणाम, पाँच समिति, गुप्ति का भाव, वह चारित्र से विरुद्ध भाव है। आहाहा! चारित्र से विरुद्ध भाव है, उसे यहाँ (लोग) चारित्र मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! इसका मार्ग अलौकिक है, लौकिक के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा!

चारित्र जो कि मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है,.. भाव है, पर्याय है न इसलिए। कोई ऐसा मान न ले कि यह फिर त्रिकाली स्वभाव है। **उसे रोकनेवाली कषाय है;..** यह पुण्य और पाप के भाव वे कषाय हैं। चाहे तो दया का, दान का, व्रत का, भक्ति का, पंच महाव्रत का (भाव), वह कषायभाव है, राग है, कषायभाव है। चारित्र जो आत्मा का चारित्र है, जो वीतरागी दशा, शुद्ध उपयोग, धर्म है, उससे यह राग विरुद्ध है। कषाय उससे विरुद्ध है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात आयी है, भाई! गाथा ही ऐसी है वहाँ (क्या हो)?

पहली तीन गाथाओं में ऐसा आया था कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को घात करनेवाला है—मिथ्यात्व, अव्रत, विकल्प और पर का ज्ञान, वह घात करनेवाला है। दूसरी गाथा में ऐसा आया कि पुण्य और पापभाव बन्धस्वरूप ही है। बन्धस्वरूप ही है तो बन्ध का कारण है। इन तीन गाथाओं में ऐसा आया कि जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तेरा निर्मल स्वभाव है, पर्याय, त्रिकाली स्वभाव का अनुभव, दर्शन-ज्ञान और चारित्र, यह जो मोक्ष का कारण है, उससे यह राग (भाव) वह विपरीत भाव है। सम्यक्त्व से मिथ्यात्व विपरीत है। सम्यग्ज्ञान से पर में रुका हुआ ज्ञान (ऐसा) अज्ञान विपरीत है। स्वरूप का चारित्र जो मोक्ष

का कारण है, उससे कषाय विपरीत है। चाहे तो पंच महाव्रत का शुभराग हो, परन्तु वह चारित्र से विपरीत है। आहाहा! ऐसा है। भगवान की वाणी ऐसी है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रभु के पास गये थे। संवत् ४९! यह कुन्दकुन्दाचार्यदेव! और यह टीका है अमृतचन्द्राचार्यदेव की। एक हजार वर्ष पहले हुए। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव दो हजार वर्ष पहले हुए और टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्यदेव हजार वर्ष पहले हुए। उनकी यह टीका है। आहाहा! समझ में आया? ये तो पद्मप्रभमलधारिदेव हैं, नियमसार की टीका करनेवाले (परमागम मन्दिर में) इस ओर पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर सन्त-मुनि! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि चारित्र जो है, वह तो मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है। क्या? चारित्र किसे कहना? कि चारित्र अर्थात् चरना, रमना। भगवान आत्मा के दर्शन हुए हैं और ज्ञान हुआ है तो ज्ञान में जो पूर्णानन्द चीज़ जानने में आयी, उसमें रमना-लीन होना, चरना, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट करना, इसका नाम चारित्र है। यह चारित्र मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है और इससे यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम कषाय हैं, राग हैं। वे चारित्र से विरुद्ध हैं। आहाहा!

उसे रोकनेवाली कषाय है;.. परन्तु अभी कषाय किसे कहना, यह खबर नहीं होती। ये पंच महाव्रत के परिणाम (किये), इसलिए मानो यह तो चारित्र (हो गया) परन्तु यह कषाय है, राग है, विकल्प है। आहाहा! आहाहा!

मुमुक्षु : महाव्रत तो बड़े पुरुष भी धारण करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अन्दर स्थिरता है, तीन कषाय के अभाव की उस भूमिका में ऐसा व्यवहार होता है, ऐसा कहकर उसे बड़े पुरुष (धारण करते हैं), ऐसा कहा। बड़े पुरुष को बड़े महाव्रत हैं न! परन्तु कौन? अन्दर भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर उछलता है, उसका दर्शन, ज्ञान और चारित्र हुए... आहाहा! समझ में आया? उसके साथ जो पंच महाव्रत के विकल्प हैं, वह व्यवहार है। उसमें स्थिरता की प्रशंसा करने के लिए महाव्रत को बड़ा कहा है। आहाहा! बाकी महाव्रत, पंच महाव्रत हैं, (वह तो राग है)। यह आयेगा। आगे के श्लोक में यह आयेगा। कलश में है, भाई! मिथ्यादृष्टि का जो यतिपना

है, वह व्यवहाररत्नत्रय बन्ध का कारण है और सम्यग्दृष्टि के जो व्यहाररत्नत्रय के परिणाम हैं, वे उसे मोक्ष का कारण है-ऐसा है नहीं। सम्यग्दृष्टि का शुभभाव हो या मिथ्यादृष्टि का हो, वह बन्ध का ही कारण है। है न इसमें? यह श्लोक अब आयेगा। यह श्लोक है न? ११०वाँ श्लोक आयेगा। देखो! इसमें है। इसमें - कलश-टीका!

यहाँ कोई भ्रान्ति करेगा जो मिथ्यादृष्टि का यतिपना क्रियारूप.. पंच महाव्रतादि क्रियारूप। **सो बन्ध का कारण है, सम्यग्दृष्टि का है जो यतिपना..** शुभभाव पंच महाव्रतादि वह। **शुभ क्रियारूप, सो मोक्ष का कारण है..** ऐसा कोई अज्ञानी मानता है। **कारण कि (आत्मा का) अनुभवज्ञान तथा दया, व्रत, तप, संयमरूप क्रिया दोनों मिलकर ज्ञानावरणादि कर्म का क्षय करते हैं।** ऐसा कितने ही अज्ञानी मानते हैं। **ऐसी प्रतीति कितने ही अज्ञानी जीव करते हैं।** कलश की राजमल्लजी की टीका है।

वहाँ समाधान ऐसा—जितनी शुभ-अशुभ क्रिया,.. आहाहा! चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी के भाव हों; चाहे तो दया, दान, व्रत, संयम, शील के भाव (हों), आहाहा! दया, दान, व्रत, तप, संयम के विकल्प। **बहिर्जल्परूप विकल्प अथवा अन्तर्जल्परूप अथवा द्रव्यों का विचाररूप अथवा शुद्ध स्वरूप का विचार इत्यादि समस्त कर्मबन्ध का कारण है। ऐसी क्रिया का ऐसा ही स्वभाव है। सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि का ऐसा भेद तो कुछ नहीं। ऐसी करतूति से (कृत्य से) ऐसा बन्ध है।** आहाहा! **शुद्धस्वरूप परिणमनमात्र से मोक्ष है।** आहाहा! कथन बड़ा है, पूरे दो पृष्ठ भरे हैं। (अपने) आगे का श्लोक आयेगा न! ११०वाँ आयेगा। अब १०९ आयेगा, पश्चात् ११० वाँ आयेगा। उसमें यह है। आहाहा!

चारित्र जो आत्मा के आनन्द में रमना, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन करना, प्रचुर वेदन! अल्प वेदन तो समकिती को भी चौथे गुणस्थान में होता है परन्तु जिन्हें सच्चा मुनिपना होता है, उन्हें अतीन्द्रिय आनन्द प्रचुर होता है। अतीन्द्रिय आनन्द जो अन्दर स्वरूप में है, वह पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन होता है, वह चारित्र है। वह चारित्र, मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है। उसे रोकनेवाली यह कषाय है। आहाहा! उससे विरुद्ध तो पुण्यभाव है। आहाहा! यह चारित्र जो मोक्ष का कारणरूप स्वभाव है, उससे विरुद्ध भाव, अन्दर कहा न! दया, दान, व्रतादि भाव, वे सब... आहाहा! कषाय हैं। **वह तो स्वयं कर्म ही है,..** वह कषाय तो कर्म ही है, वह कहीं आत्मा नहीं है। आहाहा! बहुत

कठिन काम, भाई! दरकार कहाँ है? ऐसे का ऐसा जगत में जहाँ जन्मा, उसमें जो कोई सिर पर बैठा हो (उसने जो) कहा वह हाँ किया। जाओ! जिन्दगी पूरी। आहाहा! चार गति में भटकना है, बापू! चौरासी लाख योनि! एक-एक में अनन्त बार अवतार किये। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र (के कारण अवतार किये)। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि चारित्र जो है स्वरूप में चरना, आनन्द में रमना—ऐसी जो चारित्र की दशा, वह तो मोक्ष का कारण है, उससे विपरीत कषायभाव है। चाहे तो व्रत, तप, दया, दान का विकल्प उठता है, वह चारित्र से विरुद्ध भाव है। आहाहा! वह कषाय है। **वह तो स्वयं कर्म ही है,..** वह आत्मा नहीं। वह तो स्वयं राग कर्म ही है। आहाहा! भावकर्म।

उसके उदय से ही ज्ञान के अचारित्रपना होता है। राग के उदय से ही, प्रगटपने से ही स्वरूप की वीतराग चारित्रदशा (होनी चाहिए, वह न होकर)... आहाहा! उससे आत्मा को अचारित्रपना होता है। ज्ञान अर्थात् आत्मा लेना। उसके उदय से आत्मा को अचारित्रपना होता है। आहाहा! चाहे तो लाख व्रत, तप, भक्ति और पूजा अनन्त बार करे परन्तु वह भाव राग है, वह चारित्रभाव से विपरीत भाव है। अचारित्र भाव है, कषाय भाव है, कर्म है, स्वयं कर्म है। आहाहा! **उसके उदय से..** ऐसे कषाय के भाव के कारण **ज्ञान..** अर्थात् आत्मा को **अचारित्रपना होता है।** यहाँ ज्ञान अर्थात् आत्मा लेना। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए **(कर्म) स्वयं मोक्ष के कारण का..** स्वयं मोक्ष का कारण सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निर्मल निर्विकल्प अनुभव आदि, उस कारण के **तिरोधायिभावस्वरूप..** (अर्थात्) उससे विरुद्ध भावस्वरूप। मोक्ष के कारणरूप स्वभाव से विरुद्ध भावस्वरूप **होने से कर्म का निषेध किया गया है।** यह क्रियाकाण्ड का राग, वह धर्म नहीं है, ऐसा निषेध किया है। आहाहा! अन्दर है या नहीं।

मुमुक्षु : उसमें तो है परन्तु आप समझाओ, तब समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उन्नीसवीं बार चलता है। समयसार (पर) पहले से (अन्त तक) अठारह बार तो व्याख्यान हो गये हैं। अठारह... अठारह। उन्नीसवीं बार

चलता है। यहाँ तो ४४ वर्ष हुए। जंगल में! ४४ वर्ष (हुए) और ४५ वाँ चलता है। पैंतालीस वर्ष में आये थे, ९०वाँ वर्ष शरीर को चलता है। शरीर को नब्बे, हों! आत्मा को नहीं, आत्मा तो अनादि-अनन्त है। आहाहा! यहाँ तो ४४ वर्ष से अठारह बार तो सभा में पढ़ा गया है। यह उन्नीसवीं बार चलता है। व्याख्यान भी हो गये हैं, एक पुस्तक हो गयी है। बाईस-तेईस लाख तो पुस्तकें प्रकाशित हो गयी हैं।

अब मुम्बई में बहुत पुस्तकें प्रकाशित होंगी। वहाँ सात लाख रुपये इकट्ठे किये न! ९०वीं जन्मजयन्ती! वैशाख शुक्ल दूज, आज तो चतुर्थी है। एक महीना और दो दिन हो गये। मुम्बई! एक सात लाख निकाले हैं, उसमें से व्याख्यान की पुस्तकें बनेंगी। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात सम्प्रदाय का आग्रह हो, उसे कठिन लगती है। अरे रे! यह क्या? बापू! सब खबर है, भाई! आहाहा!

भावार्थ : सम्यक्दर्शन, (सम्यक्) ज्ञान और (सम्यक्) चारित्र मोक्ष के कारणरूप भाव हैं.. वह स्वभाव कहा था न! इसलिए कोई यह न समझ जाए कि त्रिकाली (की बात) है। इसलिए पण्डितजी ने 'भाव' (शब्द) लिखा है। आहाहा! ऊपर 'स्वभाव' (शब्द) आया था न! इसलिए वापस कोई त्रिकाली न समझ जाए। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह वर्तमान निर्मल पर्यायरूप भाव है। मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह वर्तमान शुद्ध निर्मल पर्यायरूप भाव है। त्रिकाली भगवान ध्रुव है। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो उत्पादरूप पर्याय हुई, वह तो पर्यायरूपी भाव है और पर्याय के अतिरिक्त ध्रुव जो है, वह तो त्रिकाली ध्रुव सत् त्रिकाल वस्तु पड़ी है। वह स्वभाव स्वरूप, स्वभाव का पिण्ड, स्वभाव का गंज, स्वभाव का पूरा पोटला है। आहाहा! प्रभु! अन्दर ध्रुव है।

यह तत्त्वार्थसूत्र में आता है न! उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, तो यह चारित्र पर्याय है, वह उत्पाद है। वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है, वह मोक्ष का मार्ग है और वह पर्याय, ध्रुव जो स्वरूप है, उसके आश्रय से होती है। उस चारित्र से विपरीत जो विकल्प-राग उठता है, (वह बन्ध का कारण है)। इसमें (कलश-टीका में) बहुत आया है, शुद्ध (स्वरूप का) विचार करे, वह विकल्प भी बन्ध का कारण है। आहाहा! उसमें बहुत लिखा है। अभी उसमें पढ़ा न! राजमल्लजी ने बहुत स्पष्ट किया है।

भावार्थ : सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्ष के कारणरूप भाव हैं, उनसे विपरीत मिथ्यात्वादि भाव हैं;.. यह लेना है न! मिथ्यात्व, अज्ञान और अचारित्र ये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रभाव से ये तीन भाव विपरीत भाव हैं। आहाहा! पहले यह सब कहा गया है। **कर्म मिथ्यात्वादि भाव-स्वरूप हैं।** यह कर्म ही मिथ्यात्वादि स्वरूप है। यह आत्मा नहीं। पुण्य और पाप के भाव, वे कर्मस्वरूप ही हैं।

इस प्रकार कर्म.. अर्थात् विकारी भाव **मोक्ष के कारणभूत भावों से..** मोक्ष के कारणरूप भाव से (अर्थात्) पर्याय से **विपरीत भावस्वरूप हैं।** लो! है? आहाहा! बहुत कठिन काम। यहाँ तो थोड़े व्रत लो और अपवास करो तो हो गया! भाई! सुन तो सही, प्रभु! वह तो विकल्प है, राग है और यह राग है, वह मोक्ष के कारण (रूप) स्वभावभाव से विपरीत भाव है। आहाहा! है या नहीं अन्दर? यह सोनगढ़ का नहीं है।

मुमुक्षु : भगवान का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ऐसा कहते हैं। तीन लोक के नाथ सीमन्धर परमात्मा गणधर और इन्द्रों के बीच परमात्मा की दिव्यध्वनि यह आयी है। समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार कर्म मोक्ष के कारणभूत भावों से विपरीत भावस्वरूप हैं। पहले तीन गाथाओं में कहा था कि कर्म मोक्ष के कारणरूप भावों का-सम्यक्त्वादि का घातक है। समकित आदि का घातक है। पहले तीन गाथा—१५७, १५८, १५९, ये तीन। पश्चात् १६०, एक, १६१, १६२, १६३ तीन (ऐसी) सात गाथाओं में (यह सिद्ध किया)।

पहले तीन गाथाओं में कहा था कि कर्म.. अर्थात् विकारी भाव, वह **मोक्ष के कारणरूप भावों का-सम्यक्त्वादि का घातक है।** आहाहा! **बाद की एक गाथा में यह कहा है कि कर्म स्वयं ही बन्धस्वरूप है।** १६० (गाथा)। यह पुण्य और पाप के भाव कर्मस्वरूप हैं, आत्मस्वरूप है ही नहीं, बन्धस्वरूप है। आहाहा! बन्ध के कारणरूप भाव, वह बन्धस्वरूप ही हैं। पंच महाव्रतादि के परिणाम बन्धस्वरूप है। (ऐसा सुनकर) शोर मचाते हैं। आहाहा!

इन अन्तिम तीन गाथाओं में.. यह चली वे। **कहा है कि कर्म मोक्ष के कारणरूप भावों से विरोधी भावस्वरूप है..** देखा? कर्म जो पुण्य-पाप के भाव हैं,

वे मेरे हैं-ऐसा मिथ्यात्वभाव; पर का ज्ञान, ऐसा अज्ञान और राग-द्वेष भाव, ये तीनों **मोक्ष के कारणरूप भावों से विरोधी भावस्वरूप है..** यह कर्म जो विकारी भाव है, वह मोक्ष के कारणरूप भावों से विरोधी भावस्वरूप है। आहाहा! **मिथ्यात्वादिस्वरूप है।** विरोधी भावोस्वरूप है अर्थात्? मिथ्यात्वादिस्वरूप है। आहाहा! यह पुण्य-परिणाम में धर्म मानना, वह मिथ्यात्वभावस्वरूप सम्यग्दर्शन से विपरीत भाव है और उस राग को ही जानना और पर को जानने में ज्ञान को रोकना, वह अज्ञान है। अकेला परप्रकाशक ज्ञान है। यह स्व का ज्ञान जो हुआ, उस ज्ञान से वह भाव - अज्ञान विरुद्ध है और स्वरूप की चारित्रदशा है, उससे राग कषायभाव विरुद्ध है।

इस प्रकार यह बताया है कि कर्म मोक्ष के कारण का घातक है,.. (पहली) तीन गाथाएँ। **बन्धस्वरूप है..** १६० (गाथा) **बन्ध का कारणस्वरूप है,..** वह यह १६१, १६२, १६३ (गाथा में कहा)। आहाहा! मार्ग तो बापू...! आहाहा! अनन्त-अनन्त काल चौरासी के अवतार करते.. करते... करते... द्रव्यलिंग इतनी बार धारण किया, जैन दिगम्बर साधु (हुआ), सम्यग्दर्शन अनुभव बिना राग से भिन्न भगवान है, उसके सम्यग्दर्शन बिना द्रव्यलिंग इतनी बार धारण किया कि फिर (आकाश के) प्रत्येक प्रदेश में अनन्त बार जन्म लिया। भावपाहुड़ में आया है। द्रव्यलिंग धारण करके मुनिव्रत पंच महाव्रत धारण किये, वह द्रव्यलिंग है, वह वस्तु आत्मा नहीं है। नग्नपना, पंच महाव्रत, ऐसा द्रव्यलिंग तो अनन्त बार धारण किया और अनन्त बार धारण करने के बाद भी इस लोक के प्रत्येक प्रदेश में अनन्त बार जन्म-मरण हुए। आहाहा! इतनी बार पहले भी अनन्त बार द्रव्यलिंग धारण किया। महाव्रतादि अनन्त बार लिये परन्तु उनमें धर्म माना और उन महाव्रत के परिणाम को चारित्र माना... आहाहा! और देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, वह राग हे, उसे समकित माना और शास्त्र का ज्ञान (जो) परज्ञेयनिष्ठ है, उसे अपना ज्ञान माना। आहाहा! जरा मस्तिष्क को फैलाना पड़े ऐसा है, बापू! यह कोई कथा-वार्ता नहीं, यह कोई कथा नहीं। यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ भगवान की वाणी है। अभी की प्रचलित सब (बातों से) उल्टी है। आहाहा!

तुम्हारे लाडनूं में तो वह एक तेरापन्थी है, तुलसी। कहाँ का है वह? लाडनूं का, खबर है। स्थानकवासी में तुलसी है। विपरीत मान्यता, महाविपरीत (मान्यता)। खबर है

न! लाडनूं तो हम दो बार आये हैं। आहाहा! वह तुलसी आया था परन्तु यहाँ नहीं आया। यहाँ आवे नहीं, (क्योंकि) विपरीत मान्यता न! वह सब क्रियाकाण्ड में धर्म माननेवाले। उन्हें अध्यात्म माननेवाले। यह क्रिया करना, व्रत और यह सब अध्यात्म है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि वह अध्यात्म नहीं, वह तो कर्म है। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई!

भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त गुण से परिपूर्ण भरपूर प्रभु अन्दर है। ऐसे अनन्त आत्माएँ हैं। परमात्मा सर्वज्ञदेव जिनेश्वरदेव ने तो ऐसा कहा है कि सभी जीव जिनवर स्वरूप हैं। अर्थात् सर्व जीव सिद्ध समान हैं। नियमसार में आया है, नियमसार! कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने नियमसार में कहा है न (कि) मैंने मेरे लिए बनाया है। उसमें आया है। नियमसार! सर्व जीव सिद्ध समान हैं। सिद्ध समान स्वरूप न हो तो सिद्धपना पर्याय में आयेगा कहाँ से? आहाहा! यहाँ तो राग की क्रिया (होवे उसे) हमारे धर्म हुआ माने। मिथ्यात्व हुआ है और उस मिथ्यात्व के भाव में तो अनन्त संसार का गर्भ है। गर्भ है उसमें, अनन्त जन्म-मरण की उत्पत्ति का वह गर्भ है। उसमें से उत्पत्ति होगी। आया?

इस प्रकार यह बताया है कि कर्म मोक्ष के कारण का घातक है, बन्धस्वरूप है और बन्ध का कारणस्वरूप है, इसलिए निषिद्ध है। अशुभ कर्म तो मोक्ष का कारण है ही नहीं,.. हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, वह तो अकेला पाप है। वह तो अशुभकर्म है, उसकी तो यहाँ बात ही नहीं है, वह तो पाप है। **अशुभ कर्म तो मोक्ष का कारण है ही नहीं, प्रत्युत बाधक ही है;..** वह अशुभभाव तो विघ्न करनेवाला है। **इसलिए निषिद्ध ही है;..** निषिद्ध ही है। **परन्तु शुभकर्म भी कर्म सामान्य में आ जाता है..** शुभपरिणाम, वह कर्म सामान्य में वह शुभभाव आ गया। आहाहा! वह शुभकर्म कहो या शुभभाव कहो। चार बोल आये थे न! वे सामान्य में आ जाते हैं, इसलिए **वह भी बाधक ही है..** वह शुभकर्म और शुभकार्य भी विघ्न करनेवाला है। आहाहा! ऐसा कठिन पड़ता है। निवृत्ति नहीं मिलती, पूरे दिन धन्धा, स्त्री, पुत्र। एकाध घण्टा, दो घण्टा मिले (और) सुनने जाए, वहाँ ऐसी बातें करे कि इसे समझ में आये कि यह दया पालो, यह व्रत करो, यह अपवास करो। यहाँ कहते हैं कि वह सब करने-करने का जो विकल्प-राग है, वह तो विकार है, वह आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध भाव है, भाई! आहाहा! लो! **ऐसा समझना चाहिए।**

यह क्या कहा ? कि अशुभभाव जो है, वह तो निषिद्ध ही है। आहाहा ! क्योंकि वह तो बाधक ही है, परन्तु शुभभाव भी (बाधक ही है)। शुभ-अशुभ कर्म / भाव का निषेध किया तो उसमें शुभभाव भी आ गया। इसलिए वह भी बाधक ही है। शुभभाव भी विघ्न कारक है। **इसलिए निषिद्ध ही है, ऐसा समझना चाहिए।** कलश विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)